# कोऊहल कृत लीलावई कहा

डॉ. ऋषभचन्द्र जैन*

कथाओं का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव जीवन का। मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाने तथा उसको विकसित करने में कथा-कहानी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। कथाएँ मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन का भी प्रबल साधन हैं। प्रत्येक देश के लोकजीवन में जिन कथाओं का प्रचलन होता है, उन्हें ही लोक कथा कहा जाता है और उन कथाओं के कारण ही वह देश उतना ही सुसंस्कृत और सभ्य माना जाता है। हमारे देश की लोककथा परम्परा और कथा-साहित्य भी काफी सम्पन्न है। हम सब जानते हैं कि हमारे देश में नानी-दादी की कहानियां प्रायः सभी लोग बचपन में सुनते आये हैं। ऐसी कहानियां प्रायः बच्चों को सुलाने के लिए अथवा बच्चों द्वारा अधिक परेशान किये जाने पर प्रतीकात्मक रूप में उन्हें डराने के लिए भी सुनायी जाती हैं। इनके द्वारा आबाल-वृद्ध सभी का मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन होता है। प्राच्यभाषाओं के मनीषी विद्वान् डॉ. जगदीश चन्द्र जैन कहते हैं कि-"जैन विद्वान् पूर्णभद्रसूरि का संस्कृत में लिखा हुआ पंचतन्त्र तो इतना लोकप्रिय हुआ कि आगे चलकर पाठक यही भूल गये कि वह किसी जैन विद्वान् की रचना हो सकती है। वस्तुतः बिना पढ़े-लिखे अथवा कम पढ़े-लिखे तथा बालक और अज्ञ लोगों को बोध देने के लिए कहानी सर्वोत्कृष्ट साधन है और वह भी यदि उन्हीं की भाषा में सुनाई जाये।"[1]

लिखित साहित्य में कथाओं का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद के यम-यमी और पुरुरवा-उर्वशी जैसे संवादों, उपनिषदों के ब्रह्मर्षियों की भावमूलक आध्यात्मिक व्याख्याओं, महाभारत में उपलब्ध नल, नहुष, ययाति और शकुन्तला जैसे उपाख्यानों में प्राप्त होता है। पालिजातक भी अपनी उपदेशमूलक जातक कथाओं के अनुपम भंडार हैं। प्राकृत भाषा का कथा-साहित्य भी काफी महत्वपूर्ण और विशाल है। जिसका दिग्दर्शन अर्धमागधी और शौरसेनी प्राकृत आगमों से ही प्राप्त होने लगता है। प्राकृत ग्रन्थों की प्राचीन कथा सम्पदा कालक्रम के अनुसार निरन्तर विकसित होती रही है, जिससे इस भाषा का कथा-साहित्य काफी समृद्ध होता गया, परिणाम स्वरूप आज इस भाषा की हजारों कथा-कहानियां उपलब्ध हैं।

---

* निदेशक, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली (बिहार) -844128.

प्राकृत के कथाकारों ने केवल राजा, मन्त्री, सेठ, सार्थवाह और सेनापति आदि को ही अपनी रचनाओं में नायक के रूप में नहीं अपनाया, अपितु सामान्य व्यक्तियों को भी नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इन कथाकारों ने समाज का सजीव चित्रण कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के यथार्थ रूप को उजागर करता है।

अमरकोषकार ने प्रबन्ध-कल्पना को कथा कहा है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री[2] ने संस्कृत के लक्षणशास्त्रों के अनुसार कथा के लिए निम्न तत्त्वों को आवश्यक माना है, उन्हीं के शब्दों में देखिये :-

1. "कवि कल्पित कथा-कल्पना तत्त्व, कथा का कथानक कवि द्वारा कल्पित होता है। कवि ऐतिहासिक या पौराणिक आख्यानों में अपनी कल्पना द्वारा कुछ हेर-फेर कर कुछ रोचकता गुण उत्पन्न करता है।
2. वक्ता स्वयं नायक अथवा अन्य कोई व्यक्ति होता है।
3. कथानक का विभाजन परिच्छेदों में या अध्यायों में होता है, यद्यपि परिच्छेदों में कथा विभाजन का क्रम कुछ विद्वान् आख्यायिका में ही स्वीकार करते हैं, कथा में नहीं, संस्कृत में कथा और आख्यायिकाएं इतनी मिली-जुली हैं, जिससे सीमा विभाजक रेखा खींचना अनुचित-सा है।
4. कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि वस्तुवर्णनों का समावेश भी कथा में पाया जाता है।
5. कथा में अभिप्रायविशेष से प्रयुक्त होने वाले शब्दों का समावेश रहता है।"

**प्राकृत कथा के भेद**

दशवैकालिक में सामान्य कथा के अकथा, कथा और विकथा ये तीन भेद बताये गये हैं (अकहा कहा य विकहा, हविज्ज पुरिसंतरं पप्प।। -दशवैकालिक, हारिभद्रीय वृत्ति, गाथा-208)। अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा निरूपित कथा संसार परिभ्रमण का कारण होने से अकथा कहलाती है। तप, संयम, दान, शील आदि से पवित्र व्यक्ति जब लोक कल्याण की भावना से जिस कथा का निरूपण करता है, वह कथा, कथा कहलाती है। इसे ही जिनसेन आदि आचार्यों ने सत्कथा या सद्धर्मकथा कहा है। प्रमाद, कषाय, राग, द्वेष, स्त्री, भोजन, राष्ट्र, चोर एवं समाज को विकृत करने वाली कथा विकथा कहलाती है।

स्थानांगसूत्र में भी कथा के तीन भेद कहे गये हैं-अर्थकथा, धर्मकथा और कामकथा।[3] उत्तरवर्ती साहित्य में विषय, पात्र, शैली और भाषा की दृष्टि से कथाओं का वर्गीकरण किया गया है। दशवैकालिक की हारिभद्रीय वृत्ति में अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रकथा, ये चार भेद किये गये हैं।[4] समराइच्चकहा में उक्त भेदों के चतुर्थ भेद मिश्रकथा के स्थान पर संकीर्णकथा नाम आया है।[5] विद्वानों ने मिश्रकथा और संकीर्णकथा को एक ही माना है। इस कथा में अर्थ, धर्म और काम तीनों का मिश्रण होने से यह नाम दिया गया प्रतीत होता है। ग्रन्थकारों ने इनके भी अनेक भेद-प्रभेद किये हैं।

कुवलयमालाकार ने कथा के सकलकथा, खंडकथा, उल्लापकथा, परिहासकथा और संकीर्णकथा, ये पाँच भेद बतलाते हुए कुवलयमाला को संकीर्णकथा कहा है।[6] पात्रों के प्रकार के अनुसार लीलावईकार कोऊहल ने ग्रन्थारंभ में ही कथा के तीन प्रकार बतलाये हैं-दिव्य, मानुष और दिव्य-मानुष।[7] जिस कथा में दिव्यलोक के व्यक्तियों के द्वारा कथा की घटनाएँ घटती हैं जो दैवी घटनाओं के द्वारा प्रभावित होते हैं। जिनमें दिव्यलोक के दिव्यपुरुषों के कियाकलाप से कथानक और कथावस्तु का निर्माण होता है, वे कथाएँ दिव्यकथाएँ कहलाती हैं। विद्वानों ने परीकथाओं को ऐसी कथाओं में परिगणित किया है। जिन कथाओं में केवल मनुष्य या मनुष्य लोक के पात्र होते हैं, उन्हें मानुष या मानुषी कथा कहते हैं। दिव्यमानुषी कथा बहुत सुन्दर मानी गयी है। इसमें देव और मनुष्य दोनों प्रकार के पात्र होते हैं। इस प्रकार की कथा का कथाजाल बहुत ही सघन और कलात्मक होता है। कोऊहल कवि ने लीलावईकहा को स्वयं दिव्यमानुषी कथा कहा है, वे कहते हैं-

एमेय मुद्ध-जुयई-मणोहरं पाययाए भासाए।
पविरल-देसि-सुलक्खं कहसु कहं दिव्व-माणुसियं।।
तं तह सोऊण पुणो भणियं उब्बिंब-बाल-हरिणच्छि।
जइ एवं ता सुव्वउ सुसंधि-बंधं कहा-वत्थुं।।-लीला-41-42.

अर्थात् कवि की पत्नि ने कवि से कहा कि आप प्राकृत भाषा में सीधी-सादी युवति स्त्रियों के लिए मनोहर और इधर-उधर के देशी शब्दों से सुललित दिव्यमानुषी कथा कहिए। अपनी प्रिया के इस अनुरोध को सुनकर कवि ने कहा- हे त्रस्त बालहिरण के समान चंचल नेत्रोंवाली! यदि ऐसी बात है तो फिर प्रसंगयुक्त सुव्यवस्थित कथावस्तु को सुनो।

दिव्यमानुषी कथा के विषय में प्राकृत भाषा और साहित्य के मनीषी विद्वान् डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं- "दिव्य-मानुषी कथा बड़ी सरस और आकर्षक होती है। यह मार्मिक और भावप्रधान विधा है। इस कथा में एक सबसे बड़ी बात यह है कि चरित्र और घटना इन दोनों का संतुलन पूर्णरूप से रहता है। मार्मिक स्थल मनोरंजन और रसवर्षण इन दोनों कार्यों को करते हैं। दिव्य-मानुषी कथा में व्यंजक घटनाएँ और वार्तालाप गम्भीर मनोभावों का सृजन करते हैं। परिस्थितियों के विशद और मार्मिक चित्रणों में नाना प्रकार के घात-प्रतिघात परिलक्षित होते हैं। विभिन्न वर्गों के संस्कार-जिनका सम्बन्ध देव और मनुष्यों से है, स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। प्रेम का पुट या संयोग इन कथाओं में अवश्य रहता है। किसी दैवी अभिशाप के कारण प्रेमी-प्रेमिका बिछुड़ जाते हैं, उनका पुनः संयोग किसी दैवी घटना के घटित होने पर ही होता है। कथानक में नाना प्रकार की वक्रता, चरित्र में उच्चावचता एवं हास्य-व्यंग्य का सुन्दर सम्मिश्रण इन कथाओं का प्रधान उपजीव्य है। साहसपूर्ण यात्राएँ, नायक-नायिकाओं के विभिन्न प्रकार के प्रेमाकर्षण एवं सौन्दर्य के विभिन्न रूप दिव्यमानुषी कथा में पाये जाते हैं। मनोरंजन के साथ चरित्र विकास की पूरी गुंजाइश रहती है। प्राकृत कथाओं में वे ही कथाएँ दिव्यमानुषी कही जायेंगी, जिनमें

दिव्यलोक और मनुष्यलोक की मात्र घटनाएँ ही वर्णित न हों, अपितु कुछ ऐसे प्रभावक मथितार्थ भी उपलब्ध हों, जिनका सम्बन्ध लोकजीवन से हो।'[8]

प्राकृत साहित्य में 'लीलावई' का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके कर्ता भूषणभट्ट के सुपुत्र कोऊहल कवि हैं, जिसने स्वयं को असार-मति (असार-मइणा-गाथा-22) कहा है और इसकी भाषा को मरहट्ट देशी भाषा बताया है-

भणियं च पिययमाए रइयं मरहट्ट-देसि-भासाए।
अंगाइं इमीए कहाए सज्जणासंग-जोग्गाइं।। लीला-1330.

अर्थात् मरहट्ट देशी भाषा में रचित और सज्जनों की संगति के योग्य अंगों वाली इस कथा को मैंने प्रियतमा के लिए कहा।

ग्रन्थकार इस कथा-ग्रन्थ को स्वयं कथा-रत्न कहते हैं -

तस्स तणएण एयं असार-मइणा वि विरइयं सुणह।
कोऊहलेण लीलावइ त्ति णामं कहा-रयणं।। लीला-22.

उस भूषणभट्ट के इस असारमति पुत्र कोऊहल ने लीलावई नामक इस कथारत्न को बनाया है, सुनो। आगे और भी देखें-कहसु कहं दिव्व-माणुसियं।। वही-41, सुसंधि-बंधं कहा-वत्थुं।। वही-42, संखेवुप्फालियं कहावत्थुं।। वही-1329, अंगाइं इमीए कहाए-।। वही-1330, कह त्ति लीलावई णाम।। वही-1333, दीहच्छि कहा एसा।। वही-1333-1, इस प्रकार अनेक स्थलों पर ग्रन्थकार ने इसे कथा ही बताया है। अपनी रचना का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है-

दीहच्छि कहा एसा अणुदियहं जे पढंति णिसुर्णति।
ताण पिय-विरह-दुक्खं ण होइ कइया वि तणुअंगि।। -1333-1.

अर्थात् हे दीर्घाक्षि! हे तणुअंगि! इस कथा को जो प्रतिदिन पढ़ते और सुनते हैं, उनके प्रिय-वियोगजन्य दुःख कभी भी नहीं होता।

डॉ0 ए. एन. उपाध्ये ने इसे कथाकाव्य ही स्वीकार किया है।[9] मुनि जिनविजय, डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री[10] आदि विद्वानों ने इसे शास्त्रीय महाकाव्य की श्रेणी में रखा है। डॉ0 जगदीश चन्द्र जैन[11] ने इसे प्राकृत काव्य की श्रेणी में रखकर विवेचित किया है। यहाँ इस कथाकाव्य की कथावस्तु को संक्षेप में जान लेना आवश्यक है-

लीलावई कथा-काव्य का नायक प्रतिष्ठान नामक नगर का राजा सातवाहन हाल है और नायिका सिंहलराज शिलामेघ की पुत्री लीलावती, जिनकी प्रेमकथा इसमें वर्णित है। नायिका के नाम के कारण ही इसका नामकरण लीलावई रखा गया है। कुवलयावली राजा विपुलाशय और अप्सरा रंभा से उत्पन्न कन्या थी। वह गन्धर्वकुमार चित्रांगद के प्रेमपाश में पड़ गई और दोनों ने गंधर्वविधि से विवाह कर लिया। कुवलयावली के पिता को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने क्रुद्ध होकर चित्रांगद को शाप दिया, जिससे वह भीषणानन नाम का राक्षस बन गया। कुवलयावली ने निराश होकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया, लेकिन रंभा ने उपस्थित होकर उसे धीरज बँधाया और उसे यक्षराज नलकूबर के सुपुर्द कर दिया।

विद्याधर हंस के वसंतश्री और शरदश्री नाम की दो कन्यायें थीं। विद्याधरी

वसंतश्री का विवाह यक्षराज नलकूबर के साथ हुआ था। महानुमती इनकी पुत्री थी। महानुमती और कुवलयावली दोनों में बड़ा स्नेह था। एक बार वे दोनों विमान में बैठकर मलय पर्वत पर गयीं। वहाँ सिद्धकुमारियों के साथ झूला झूलते हुए महानुमति और सिद्धकुमार माधवानिल का परस्पर प्रेम हो गया। घर लौटने पर महानुमति अपने प्रिय के विरह से व्याकुल रहने लगी। बाद में ज्ञात हुआ कि माधवानिल को कोई शत्रु भगाकर पाताललोक में ले गया है। महानुमति और उसकी सखी कुवलयावली मनोरथ-सिद्धि के लिये गोदावरी के तट पर पहुँच कर भवानी की उपासना करने लगीं।

लीलावती सिंहलराज शिलामेघ और वसंतश्री की बहन शरदश्री की पुत्री थी। वह प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन (हाल) का चित्र देखकर मोहित हो गई, वह उसे केवल स्वप्न में देखा करती। अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर लीलावती अपने प्रिय की खोज में चली। अपने दल के साथ वह गोदावरी तट पर पहुँची और यहाँ अपनी मौसी की कन्या महानुमती से मिल गई। तीनों विरहिणियाँ एक साथ रहने लगीं।

इधर अपने राज्य का विस्तार करने की इच्छा से राजा सातवाहन ने सिंहलराज पर आक्रमण कर दिया। राजा के सेनापति विजयानंद ने सलाह दी कि सिंहलराज से मैत्री रखना ही उचित होगा। सातवाहन ने विजयानंद को अपना दूत बनाकर भेजा। वह रामेश्वर होता हुआ सिंहल के लिये रवाना हुआ। लेकिन मार्ग में तूफान आने के कारण नाव टूट जाने से गोदावरी के तट पर ही रुक जाना पड़ा। यहाँ पर उसे एक नग्न पाशुपत के दर्शन हुए। पता लगा कि सिंहलराज की पुत्री लीलावती अपनी सखियों के साथ यहीं पर निवास करती है। विजयानंद ने सातवाहन के पास पहुँचकर उसे सारा वृत्तान्त सुनाया। सातवाहन ने लीलावती के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन लीलावती ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि जब तक महानुमती का उसके पति के साथ पुनर्मिलन न होगा तब तक वह विवाह न करेगी। यह सुनकर राजा सातवाहन अपने गुरु नागार्जुन के साथ पाताललोक में पहुँचा और उसने माधवानिल का उद्धार किया। अपनी राजधानी में लौटकर उसने भीषणानन राक्षस पर आक्रमण किया जिससे चोट खाते ही वह एक सुंदर राजकुमार बन गया। अब राजा सातवाहन, गंधर्वकुमार चित्रांगद और माधवानिल तीनों एक स्थान पर मिले। चित्रांगद और कुवलयावली तथा माधवानिल और महानुमती का विवाह हो गया। राजा सातवाहन और लीलावती का विवाह भी बड़ी सजधज के साथ सम्पन्न हुआ।

इस कथाकाव्य में कवि ने शास्त्रीय महाकाव्य की भाँति प्राकृतिक दृश्यों का कलात्मक एवं सजीव वर्णन किया है। यहाँ कतिपय प्राकृतिक दृश्यों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है-

**प्राकृतिक-वर्णन** (वन, उद्यान, वृक्ष और लताएँ)

लीलावई में विविध प्रसंगों में 'कुमुद वन (25), कणियार वन (77), पलाश वन (85), आम्र वन (86), लवंगेला वन (175), एलावन (196,1026), नन्दन वन (361), चन्दन वन (414,415,1025), अशोक वन (795), तपोवन (892), लवलिलवंगेलावन आदि वनों का उल्लेख आया है। तपोवनोद्यान (235), मनोहरोद्यान

(277,351), वरोद्यान (352) और मन्दिरोद्यान (1031) इस प्रकार चार उद्यानों का उल्लेख हुआ है।

ग्रन्थकार ने इन वनों और उद्यानों में उपलब्ध अनेक वृक्षों का उल्लेख किया है, जिनमें सरल (197), तमाल (197,522,1185), ताड़ (197,1026), प्रियाल (197,1026), साल (197,1026), पुंनाग (197,1027), जामुन (197), कदम्ब (197), आम (197,354,1028), चन्दन (336,348,461), पूग (सुपारी) (354), पाटल (79,1029), कंकेलि-अशोक (86,751,1026), बकुल (1026), कंकोल्लि-काली मिर्च (1027), कुरवक (1027), कुरण्टक (1027), कुब्जक (1027), देवदारु (1028), मंदार (1028), प्रियंगु (1029), पीपल (1031), बड़ (1031), ऊमर (1031), ऋणस (1031), माहुलिंग (1031), नारियल (1031), केलि (1031), सप्तच्छद (174,629), मालती (27,1028), मल्लिका (62,78,1028), कणियार-कणवीर (77,1027), सिन्दुवार-सिय सिन्दुवार (82,1029), नलिनी (83,471,472), नागकेशर (197,1027), परिजात (279,289), कर्पूर (500), मृणाल (500), रत्तुप्पल (759), केतकी (1027), कुन्द (1027), चंपक-चम्पा (1028), नवमालिका (1029), कंचन-कचनार (1027) आदि उल्लेखनीय हैं। ये वृक्ष औषधि, पुष्प-सुगंधी फल, इमारती और जलाऊ लकड़ी की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

इसमें कुंदलता (81), माधवी लता (86), लवलि लता (196,1043), कल्पलता (348), कप्पतरुकणइ (594), रइकणइ-रतिलता (771), दक्खलया (1031) आदि लताओं के उल्लेख मिलते हैं।

**वसन्त-वर्णन**

कथा के प्रारंभ में ही प्रतिष्ठान नगर की शोभा का वर्णन करने के उपरान्त कवि कहता है कि हे सुतनु! इच्छानुसार धनार्जन करनेवाले उस राजा के समय में कामदेव के दूत के समान वसन्त आ गया। पहली बार मलयानिल के झोंके और कोकिलों की मधुर ध्वनि से मुखरित वन वसन्त के आगमन की सूचना दे रहे हैं। तिलकवृक्ष से उत्पन्न शोभा वाला वसन्त कनेर वन को स्वर्णाभूषण की तरह धारण कर रहा है। कुन्दलता, सिन्दुवार आदि के पुष्प झड़ रहे हैं और नलिनी हँसती हुई दिखलाई पड़ रही है। पलाश वनों की वीथिकाओं में खिले हुए फूलों से लाल कपड़ों की पोशाक धारण किये हुए वसन्त नये दूल्हे की तरह प्रतीत हो रहा है-

दीसइ पलास-वण-वीहियासु पप्फुल्ल-कुसुम-णिवहेण।
रत्तंबर-णेवच्छो णव-वरइत्तो व्व महु-मासो।। 85।।

और भी देखिये-

परिवड्ढइ चूय-वणेसु विसइ णव-माहवी-वियाणेसु।
लुलइ व कंकेलि-दलावलीसु मुइउ व्व महु-मासो।।86।।

अर्थात् वसन्त प्रसन्नता की तरह आम्र वनों में बढ़ रहा है, नवीन माधवी लता के कुंजों में विकसित हो रहा है और अशोक के पत्तों में लोटता-सा प्रतीत हो रहा है।

**प्रभात-वर्णन**

प्रभात की सूचना के साथ धीरे-धीरे पूर्व दिशा की ओर उठा हुआ कुछ लाल प्रभा से युक्त नभ तल कबूतर के पंखों के समान पाण्डुर हो गया। अपने घोसलों से उड़े पक्षियों के कलरव से व्याकुल दिनरूपी लक्ष्मी का मुख देखने की इच्छा से वन उठे हुए से प्रतीत होते हैं। आकाशरूपी वृक्ष से फैली हुई प्रातःकालीन हवा से मन्द प्रकाश वाला तारा समूह ओस के जल बिन्दु के समान नष्ट हो रहा था। जिसे प्रातःकालीन श्रेष्ठ हाथी ने उखाड़ दिया है और जिस पर से चन्द्रमा रूपी पक्षी उड़ गये हैं, ऐसी निशारूपी लता के नक्षत्ररूपी फूल गल रहे हैं। रात्रिरूपी स्त्री के द्वारा ज्योत्स्नारूपी मदिरा पीकर फेंके गये स्फटिक के प्याले के समान मधुकररूपी मृगयुक्त चन्द्रमा आकाश से गिर रहा है। सुख के स्वाद से उत्पन्न सन्तोषवाली दुर्विदग्ध कुमुदिनियाँ तेज सूर्य के आतप की आशंका से संकुचित हो रही हैं। कवि आगे कहता है-

पिययम-वोच्छिण्ण-विणिंत-रमणि-णीसास-पवण-पहुओ व्व।
उवभुत्त-णेह-तणुओ विज्झायइ दीवय-णिहाओ।।1094।।
चउ-जामालिंगण-सुह-पसुत्त-पच्चुट्ठियाण मिहुणाण।
णिद्दा-विरमालस-मंथराइं अग्घंति दिट्ठाइं।।1095।।
णिद्दा-णिहणालस-विवलियंग-मासल-विमुक्क-सासाहिं।
सयणाइं कामिणीहिं पिय व्व सुइरेण मुच्चंति।।1096।।

अर्थात् प्रियतम के वियोग से निकलती हुयी रमणी की श्वांस की वायु से काँपते हुए की तरह, पी लिये गये तेल से क्षीण दीपक समूह दिखलाई पड़ रहा है। चार प्रहर तक आलिंगन के सुख से सोकर प्रातः काल जागे हुए स्त्री-पुरुषों के जोड़ों की निद्रा समाप्त हो जाने से अलसाई हुई मन्द दृष्टियाँ सुशोभित हो रही हैं। निद्रा के प्रभाव से आलस वालीं, ढीले स्थूल अंगों वालीं और निश्वास छोड़ती हुई कामिनियाँ अपनी शय्याओं को पति के समान विलम्ब से छोड़ रही हैं। अन्य श्रृंगारिक कथनों के साथ प्रभात का विस्तृत वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् सातवाहन की सेना के प्रस्थान का नगाड़ा बज जाता है।

**सन्ध्या-वर्णन**

सन्ध्या का विवेचन करते हुए कवि कहता है-

रवि-णिवडण-विहडिय-जलहि-सलिल-पायडिय-रयण-कंति व्व।
संगलण-मासला णहयलम्मि संझा समुल्लसिया।।442।।
काल-परिणाम-सिढिलस्स सहइ णह-तरु-फलस्स दिणवइणो।
अत्थइरि-सिला-वडणुच्छलंत-रस-सच्छहा संझा।।443।।

अर्थात् सूर्य के गिरने से उछले समुद्र के जल से निकले रत्नों की कान्ति के समान तथा एकत्रित मांस की तरह आकाश में सन्ध्या सुशोभित होने लगी। काल के परिणाम से शिथिल हुए नभरूपी वृक्ष के फलस्वरूप सूर्य के अस्ताचल की शिला पर गिरने से उछले रस की प्रभा के समान सन्ध्या सुशोभित होने लगी। सूर्य के गिरने से

विघटित समुद्र के जल के मार्ग से निकले वड़वानल के धूम की तरह अन्धकार से सम्पूर्ण आकाश भर गया। पर्वतों के बीच से निकला चन्द्रमा का प्रथम प्रकाश, धवलित विशाल भवनों के ऊपर पड़ने से ध्वजाओं का प्रतिबिम्ब दिखलाने में प्रवृत्त हो गया।

दीव-सिहोहा रेहंति णयर-भवणोयरेसु दिप्पंता।
मुक्का रविणा किरण व्व तिमिर-परिमाणमवगंतुं।।1071।।
तो उयय-सेल-चूडामणि व्व तम-णिवह-वारण-मइंदो।
आसा-वहु-वयण-विसेसओ व्व दूरुग्गओ चंदो।।1072।।

नगर के भवनों के मध्य को प्रकाशित करता हुआ दीपक का ज्योतिपुंज इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो सूर्य के द्वारा छोड़ी गयी किरणों से अन्धकार का परिमाण ज्ञात कर रहा हो। कवि और आगे कहता है- उदयाचल के शिखर की चूड़ामणि के समान, अन्धकार-समूहरूप हाथी के लिए सिंह के समान और दिशारूपी वधू के तिलक के समान चन्द्रमा उदित हुआ।

**शाप-वर्णन**

कैलाश पर्वत पर पार्वती-शिव मन्दिर के सामने भगवान् गणेश हर्ष से रोमांचित होकर नृत्य कर रहे थे जो विषदृश नृत्य के कारण भयंकर दिख रहे थे। जिन्हें सुलसापुरी के विद्याधर राजा हंस की पुत्रियों वसन्तश्री और शरत्श्री ने देखा और शरत्श्री ने उनका उपहास किया, जिससे क्रोधित होकर भगवान् गणेश ने शॉप देते हुए कहा- हे दुर्विनीत! पापिनि! नीच मनुष्य लोक में रहो और अपने यौवन के उन्माद से उत्पन्न उच्चवृक्ष के फलों को प्राप्त करो।[12] तत्पश्चात् उन दोनों कुमारियों ने विघ्ननाथ (गणेश) से क्षमा याचना की। क्रोध शान्त होने पर उन्होंने कहा-

जइ वच्च मच्चलोए वि तंसि हियइच्छियाइं सोक्खाइं।
पाविहसि माणुसाओ सरयसिरि मह पसाएण।।301।।
जइया विज्जाहर-सिद्ध-जक्ख-गंधव्व-माणुसाणं च।
एक्कत्तो संवलियाण वयण-कमलाइं पेच्छिहसि।।302।।
तइया विमुक्क-साव पुणो वि विज्जाहरत्तणं पुत्ति।
लहिहिसि एवं भणिए अद्दंसणमुवगया बाला।।303।।

अर्थात् हे शरत्श्री! मर्त्यलोक में जाने पर भी मेरी कृपा से वहाँ मनवांछित मनुष्यों के सुख प्राप्त करोगी। जब एकत्र मिले हुए विद्याधर, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व और मनुष्यों के मुख कमल देखोगी। हे पुत्रि! उस समय शॉप से मुक्त होकर पुनः विद्याधरत्व प्राप्त करोगी। वसन्तश्री को भी विघ्ननाथ ने उसी प्रकार आश्वस्त किया।

**कुमारियों के विषय में कवि का विचार**

जब उनके माता-पिता को इस शॉप की जानकारी मिली तो वे चिन्तित हो गये तथा कुमारियों के विषय में इस प्रकार विचार किया-

सव्वाउ च्चिय कुमरीओ कुल-हरे जा ण हुंति तरुणीओ।
ताव च्चिय सलहिज्जंति ण उण णव-जोवणारंभे।।
ता देमि वसंत सिरी वि सच्चविय-गुण-विसेसस्स।

वामाहि वि वामयरो वच्चइ जा णम्ह इय-देव्वो।।
ण उणो धूयाए समं चित्त-क्खणयं-जणस्स जियलोए।
हियइच्छिओ वरो तिहुअणे वि दुलहो कुमारीणं।।313-15।।

अर्थात् माता-पिता के घर में सभी कुमारियाँ तभी तक प्रशंसनीय होती हैं जब तक वे युवा नहीं हुई हैं किन्तु नवयौवन प्राप्त होने पर नहीं। इसलिए गुण-विशेष को देखकर किसी वर को वसंतश्री को दिये देता हूँ ताकि हमलोगों का हतभाग्य (अशुभ भाग्य) प्रतिकूल से प्रतिकूलतर न हो जाय। इस जीवलोक में पिता के लिए पुत्री के समान कष्टकारक और कोई नहीं है। कुमारियों के लिए हृदयाभिलषित वर तीन लोक में भी मिलना दुर्लभ है।

**बालत्तणं णमो**

देव, सिद्ध, किन्नर, विद्याधर और यक्षों की स्त्रियों के गीतों की साक्षी में वसन्तश्री और नलकूबर का मंगल विवाह हुआ। यथेष्ट सुख का उपभोग करते हुए उन दोनों से महानुमति का जन्म हुआ। आगे बालपन के विषय में नलकूबर के मुख से कवि ने कहलवाया है-

तं जाणिसि च्चिय तुमं सव्वाणं वि दुद्ध-गंधिय-मुहीण।
जायंति जहिच्छायार-मणहरा कुल-हरे दियहा।।
जह-संठिय जह-परिभमिय रमिय जच्छंद जंपिय जहिच्छं।
जह तह सव्वत्थ सलाहणिज्ज बालत्तणं णमो ते।।332-33।।

अर्थात् तुम जानती ही हो कि सभी दूध से सुवासित मुखवाली अर्थात् शैशवावस्था वाली बालिकाएँ पिता के घर में इच्छानुसार मनोहर दिन व्यतीत किया करती हैं। इच्छानुसार यत्र, तत्र, सर्वत्र बैठना, घूमना, रमण करना और वार्तालाप करना ये सब बाल्यावस्था में प्रसंशनीय होते हैं, इसलिए उस बालपने को नमस्कार हो।

**यक्षों द्वारा विवाह के उपलक्ष्य में मदिरापान**

कवि ने यक्षराज नलकूबर की पुत्री महानुमति और माधवानिल के विवाह के पश्चात् इनके विवाह के उपलक्ष्य में रात्रि के समय मदिरोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें यक्षिणियों द्वारा विविध प्रकार की मदिरा से परिपूर्ण मदिरागार सजाये गये। कवि ने सोलह गाथाओं में इस मदिरोत्सव का चित्रण किया है। कहा गया है-

जह जह पिज्जइ मइरा तह तह सणिओ मओ समल्लियइ।
जह जह अल्लियइ मओ तह तह सोहा समारुहइ।।1267।।

अर्थात् जैसे जैसे मदिरा पी जा रही थी वैसे वैसे धीरे धीरे उन्मत्तता बढ़ रही थी। जैसे जैसे उन्माद बढ़ रहा था वैसे वैसे शोभा बढ़ रही थी। मदिरा के मद के उन्माद से बहुत सी पुरानी बातों का वे स्मरण करते थे और तुरन्त कही हुई बात को वे भूल जाते थे तो भी उनके दुविधा में कहे गये वचन शोभा को प्राप्त कर रहे थे।

**दिव्य पुरुषों द्वारा सातवाहन को सिद्धियाँ देना**

राजा सातवाहन और लीलावती के विवाहोपलक्ष्य में तथा सिद्धों, यक्षों और

विद्याधरों का उपकार करने के परिणाम स्वरूप उन सभी दिव्य पुरुषों द्वारा राजा को अनेक उपहार दिये गये-

एव पहाए संते सव्वेहि मि तेहिं दिव्व-पुरिसेहिं।
बहु मण्णिऊण दिण्णाओ णियय-णिययाओ सिद्धीओ।।
अंतद्धाणं सिद्धाहिवेण जक्खेण अक्खयं कोसं।
गंधव्वेण य दिण्णं दिवम्मि गमणं महीवइणो।।
हंसेण वि से देण्णं वय-थंभ-रसायणोसहं मंतं।
पडिवण्णं जं अण्णं पि किं पि तं तुज्झ साहीणं।।1313-1315।।

अर्थात् प्रातःकाल होने पर उन सभी दिव्य पुरुषों ने अत्यधिक सम्मानपूर्वक अपनी-अपनी सिद्धियाँ राजा को प्रदान कीं। सिद्धाधिपति मलयानिल ने अदृश्य होने वाली विद्या, यक्ष नलकूबर ने अक्षय कोश प्रदान करनेवाली विद्या और गंधर्व ने गगनचारी विद्या राजा को प्रदान की। विद्याधर राजा हंस ने आयु रोकनेवाली रसायन औषधि मंत्र-तंत्र राजा को दिये और कहा कि जो कुछ भी मेरा है, उसे भी तुम अपने अधीन करो। इस प्रकार सभी की भेंट स्वीकार करके वह राजा सातवाहन लीलावती के साथ विदा कर दिया गया।

**अलंकार**

लीलावई कहा में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति, अपह्नुति, मालादीपक, भ्रान्तिमान, विरोधाभास, निदर्शना, दृष्टान्त, काव्यलिंग आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यहाँ उदाहरण स्वरूप कतिपय अलंकारों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

**उपमा**

इय तस्स कणय-देवालयस्स दाहिण-दिसाए अणुलग्गं।
गोला-णइ-वयण-विसेसयं व रम्मं मढाययणं।।243।।

अर्थात् उस स्वर्ण मन्दिर के दक्षिण दिशा में सटे हुए गोदावरी नदी के मुख के तिलक के समान रमणीय मठायतन है। यहाँ मठायतन की उपमा गोदावरी नदी के मुख के तिलक से दी गयी है।

णिय-तेय-पसाहिय-मंडलस्स ससिणो व्व जस्स लोएण।
अक्कंत-जयस्स जए पट्ठी ण परेहि सच्चविया।।69।।

राजा सातवाहन की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रतापी राजा ने अपने पराक्रम से समस्त संसार को जीत लिया है, पर उसकी पीठ शत्रुओं ने कभी भी उसी प्रकार नहीं देखी है, जिस प्रकार अपने तेज से संसार को उज्ज्वल करनेवाले चन्द्रमा की पीठ किसी ने नहीं देखी है। यहाँ चन्द्रमा की पीठ उपमान है और राजा की पीठ उपमेय।

ओसहि सिहा-पिसंगाण वोलिया गिरि गुहासु रयणीओ।
जस्स पयावाणलकन्ति-कवलियाणं पिव रिऊणं।।70।।

राजा सातवाहन के शत्रुओं की रात्रियाँ पर्वत की कन्दराओं में औषधियों की शिखा ज्वाला से रक्तवर्ण होकर व्यतीत होती थीं। वे उसकी प्रतापाग्नि की कान्ति से ग्रस्त थे।

इसं पद्य में औषधियों की शिखा की प्रतापाग्नि की कान्ति से उपमा दी गयी है। यहाँ पर अपह्नुति अलंकार होने जा रहा था, पर कवि ने इव शब्द का प्रयोग कर उपमा ही रहने दिया है। कवि की उपमा सम्बन्धी यह कुशलता उच्चकोटि की है।

**उत्प्रेक्षा**

दीसइ पलास-वण-वीहियासु पप्फुल्ल-कुसुम-णिवहेण।
रत्तंबर-णेवच्छो णव-वरइत्तो व्व महु-मासो।। 85।।

अर्थात् पलाश के वनों की वीथिकाओं में खिले हुए फूलों से लाल कपड़ों की पोशाक को धारण किये हुए वसन्त नवीन दूल्हा की तरह प्रतीत हो रहा है। यहां किंशुक के कुसुमों में लाल वस्त्रों की उत्प्रेक्षा की गयी है। और भी देखिये-

चंदुज्जुयावयंसं पवियंभिय-सुरहि-कुवलयामोयं।
णिम्मल तारा लोयं पियइ व रयणी-मुहुं चंदो।।31।।

कुमुद के अवतंस-कर्णाभूषण को धारण करनेवाली रात्रि के मुख का पान चन्द्रमा कर रहा है तथा इस रात्रि में नीलकमल की गन्ध बह रही है और निर्मल ताराओं का प्रकाश है।

यहाँ उत्प्रेक्षा के साथ 'रयणीमुहुँ' रात्रिमुख में नायिका मुख का श्लेष भी है। उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने चन्द्रमा द्वारा रजनीमुख के चुम्बन की स्थिति पर प्रकाश डाला है।

केत्तिय मेत्तं संझायवस्स सेसं ति दंसणत्थं व।
आरूढा तिमिर-चर व्व वासतरुसेहरं सिहिणो।।262।।

सायंकाल का सूर्यप्रकाश अब कितना शेष रहा है, यह देखने के लिये मानों मयूर, अन्धकार के दूत के सदृश अपने निवासवृक्षों के शिखर पर चढ़ गये।

**रूपक**

तं जह मियंक केसरि-कर-पहरण-दलिय-तिमिर-करि-कुम्भे।
विक्खित्त-रिक्ख-मुत्ताहलुज्जले सरय-रयणीए।।23।।

चन्द्रमारूपी सिंह के किरणरूपी हाथ के प्रहार से अन्धकाररूपी हाथी के ध्वस्त होने पर विखरे हुए नक्षत्ररूपी मोतियों से उज्जवल शरद् कालीन रात्रि थी।

चन्द्रमा में सिंह का, किरणों में हाथ का, अन्धकार में हाथी का और नक्षत्रों में मोतियों का आरोप किया गया है।

**श्लेष ( उक्तिश्लेष )**

घिप्पइ कणयमयं पिव पसाहणं जणिय-तिलय-सोहेण।
अब्भहिय-जणिय-सोहं कणियारवणं वसंतेण।।77।।

अर्थात् तिलक (तिलकवृक्ष) की शोभा से उत्पन्न वसन्त के द्वारा अत्यधिक सौन्दर्यशील कनेर वन को कनकमय आभूषण की तरह धारण किया जा रहा है।

यहाँ तिलक (टीका और तिलकवृक्ष) में श्लेष अलंकार है। टीकाकार ने इसे उक्ति श्लेष माना है। काव्यालंकार के अनुसार यहाँ श्लिष्ट रूपक भी माना जा सकता है।

**व्यतिरेक**

जस्स पिय-बंधवेहि व चउवयण-विणिग्गएहि वेएहि।
एक्क-वयणारविंदट्ठिएहिं बहु-मण्णिओ अप्पा।।21।।

भूषणभट्ट के प्रिय बान्धवों ने ब्रह्मा के चार मुखों से निकले चार वेद इसके एक ही मुख में स्थित होने से अपने को कृतार्थ मानते थे।

चारों मुखों से निर्गत चारों वेदों को एक ही मुख में स्थित करना व्यतिरेक है। कवि ने बहुलादित्य के प्रकाण्ड वैदुष्य को प्रदर्शित करने के लिये इस अलंकार की योजना की है।

**अर्थान्तरन्यास**

अत्थायंतो वि हु अत्थ-सिहरिणा धारिओ सिरेण रवी।
सूरो अपच्छिमाए दसाए जण-वल्लहो होइ।।438।।

अस्त होते समय भी सूर्य को अस्ताचल अपने सिर पर उसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार आपत्ति में पड़ा हुआ शूर भी जन-वल्लभ ही होता है।

**समासोक्ति**

जोण्हाऊरिय कोस-कंति-धवले सव्वंग-गंधुक्कडे।
णिव्विग्घं घर-दीहियाए सुरसं वेवंतओ मासलं।।
आसाएइ सुमंजु-गुंजिय-रवो तिंगिच्छि-पाणासवं।
उम्मिल्लंत-दलावली-परियओ चंदुज्जुए छप्पओ।।24।।

भ्रमर मकरन्द-पुष्परस को पी रहा है, जबकि कुमुदिनी ज्योत्स्ना से पूरित होने के कारण उसका आभ्यन्तर भाग प्रकाशित हो रहा है। सुगन्ध तीव्रता से बढ़ रही है। घर की दीर्घिका-बाबड़ी में कम्पायमान होता हुआ तथा मधुर गुंजार करता हुआ और विकसित पत्र-पंक्ति से घिरा हुआ यह भ्रमर कुमुदिनी का रसपान कर रहा है।

**मालादीपक**

इमिणा सरएण ससी ससिणा वि णिसा णिसाए कुमुय-वणं।
कुमुय-वणेण व पुलिणं पुलिणेण व सहइ हंस उल।।25।।

इस शरत्काल से शशि सुशोभित होता है, शशि से रात्रि, रात्रि से कुमुदवन, कुमुदवन से पुलिन और पुलिन से राजहंस श्रेणि सुशोभित होती है।

**भ्रान्तिमान**

घर-सिर-पसुत्त कामिणि-कवोल संकन्त-ससिकला-वलयं।
हंसेहि अहिलसिज्जइ मुणाल-सद्धालुएहि जहिं।।60।।

जहाँ पर घर की छतों के ऊपर सोई हुई कामनियों के कपोलों में प्रतिबिम्बित चन्द्रकला के समूह को मृणाल के इच्छुक श्रद्धालु हंस प्राप्त करने की इच्छा करते हैं।

**दृष्टान्त**

जइ सो तेणं चिय उयणमेइ ता साह किं पयासेण।
वायाए जो विवज्जइ विसेण किं तस्स दिण्णेण।।155।।

यदि सिंहल नरेश उतने से ही नम्र हो जाय तो फिर प्रयास करने से क्या लाभ? जो शब्द द्वारा ही मारा जाय, उसे विष देने से क्या लाभ ?

यहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्तालंकार है।

लीलावई कहा के कतिपय प्रसंगों पर यहाँ संक्षेप में विचार किया गया। यह विशाल एवं महत्त्वपूर्ण कथा-काव्य अनेक विशेषताओं से भरा हुआ है। इसमें श्रृंगार और वीररस की सुन्दर प्रस्तुति हुई है। इसमें विद्याधर राजा हंस की मेरु पर्वत पर स्थित सुलसा पुरी, धनराज कुबेर के पुत्र नलकूबर की अलकापुरी, सिद्धराज मलयानिल की मलय पर्वत स्थित केरलापुरी, राजा शिलामेघ के सिंहलद्वीप और महाराज सातवाहन के प्रतिष्ठान नगर का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। देवों और मनुष्यों का एक साथ मिश्रण होने से कथा अत्यधिक सुरुचिपूर्ण हो गयी है। इसमें भीमेश्वर तीर्थ, रामेश्वरम् , गोदावरी नदी आदि के उल्लेख एवं प्रसंग प्राप्त होते हैं।

**सन्दर्भ-**

1. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.-309.
2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.-439.
3. तिविहा कहा पण्णत्ता तं जहा-अत्थकहा, धम्मकहा, कामकहा।-स्थानांगसूत्र, ठाणा-3, सूत्र-189.
4. अत्थकहा कामकहा धम्मकहा चेव मीसिया य कहा।
   एत्तो एक्केक्कावि य णेगविहा होइ नायव्वा।।-द0वै0 गाथा-188 की वृत्ति।
5. एत्थ सामन्नओ चत्तारि कहाओ हवंति, तं जहा- अत्थकहा कामकहा धम्मकहा संकिण्णकहा य।-समराइच्चकहा, पृ.-2. (कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन-डॉ0 प्रेमसुमन जैन, वैशाली)
6. ताओ पुण पंच कहाओ, तं जहा-सयलकहा, खंडकहा, उल्लावकहा, परिहासकहा तह संकिण्ण-कह त्ति णायव्वा। -कुवलयमाला-4.5.
7. तं जह दिव्वा तह दिव्वमाणुसी माणुसी तह च्चेय।-लीलावई, गाथा-35.
8. हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वैशाली, पृ. 116.
9. लीलावई, इन्ट्रोडक्शन, पृ.-40-46.
10. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.-289.
11. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.-501-3.
12. जह वच्च दुव्विणीए णिवससु पच्चंत-माणुसे लोए।
    पावेसु जोव्वणुम्माय-तुंग-तरुणो फलं पावे।।294।।

**सहायक ग्रन्थ**

1. लीलावई, सम्पादक डॉ0 ए0 एन0 उपाध्ये, प्रकाशक- सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, मुम्बई, सन् 1949.
2. लीलावई, सम्पादन-अनुवाद-डॉ0 लालचंद जैन एवं डॉ0 ऋषभचन्द्र जैन, प्रकाशक- प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली (बिहार), सन् 2002.

3. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक-तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, सन् 1988.
4. प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 जगदीशचन्द्र जैन, प्रकाशक-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1961.
5. जैन कथा साहित्य की विकास यात्रा, आचार्य देवेन्द्र मुनि, प्रकाशक-तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, सन् 1989.
6. प्राकृत जैन कथा साहित्य, डॉ0 जगदीशचन्द्र जैन, प्रकाशक-लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, सन् 1971.
7. काव्यादर्श, दण्डी, अनुवादक-व्रजरत्न दास, श्री कमलमणि ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी, सन् 1988.
8. कुवलयमाला कहा का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ0 प्रेमसुमन जैन, प्रकाशक- प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली (बिहार)।
9. हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक- प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली (बिहार), सन् 1965.

## पाँच व्रत

1. **कुलजोणिजीवमग्गण ठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं।**
   **तस्सारंभणियत्तण परिणामो होइ पढमवदं॥**
   जीवों के कुल, योनि, जीवस्थान, मार्गणा स्थान आदि जानकर उनके आरम्भ से निवृत्ति का परिणाम प्रथम व्रत है।
2. **रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं।**
   **जो पजहदि साहु सया विदियवयं होइ तस्सेव॥**
   राग से अथवा द्वेष से अथवा मोह से होने वाले मृषा भाषा के परिणाम को जो साधु सदा छोड़ता है, उसी के द्वितीय व्रत होता है।
3. **गामे वा णगरे वा रण्णे वा पेच्छिऊण परवत्थुं।**
   **जो मुचदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव॥**
   जो ग्राम में अथवा नगर में अथवा अरण्य में परवस्तु को देखकर ग्रहण भाव को छोड़ता है, उसी के तृतीय व्रत होता है।
4. **दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभावं णिवत्तदे तासु।**
   **मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं॥**
   स्त्री का रूप देखकर उसके प्रति वांछाभाव का त्याग करना अथवा मैथुन संज्ञा रहित परिणाम चतुर्थ व्रत है।
5. **सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।**
   **पंचमवदमिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स॥**
   निरपेक्ष भावना पूर्वक समस्त परिग्रह का त्याग चारित्र का भार वहन करने वाले का पंचम व्रत कहा है।

**संदर्भ- 1. नियमसार 56-60.**